यज्ञपात्रों के चित्र एवं परिचय

विदित हो कि यज्ञ के प्रमुख रूप से दो विभाग हैं - श्रौत एवं स्मार्त। श्रुति वेद का ही दूसरा नाम है। तदनुसार श्रुति-प्रतिपादित यज्ञों को श्रौत एवं गृह्यसूत्रों तथा स्मृतियों में प्रतिपादित यज्ञों को स्मार्त यज्ञ कहते हैं। यहाँ श्रौतयागों में प्रयुक्त होनेवाले यज्ञपात्रों के चित्र प्रस्तुत किये जा रहे हैं। यद्यपि विद्यापीठीय वेदविभाग में ये पात्र तत्तद् काष्ठ विशेष से निर्मित संग्रहीत हैं। तथापि उनके चित्र यहाँ अवलोकनार्थ प्रस्तुत हैं। चूँकि उन काष्ठ निर्मित पात्रों का प्रदर्शन यहाँ सम्भव न था।

इस विषय में यह उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत समस्त यज्ञपात्र के चित्रों एवं यज्ञवेदियों के चित्रों का निर्माण कार्य संहिता, ब्राह्मण, एवं श्रौतसूत्रों की सहायता से अपने हाथों से संगणक यन्त्र (कम्प्यूटर) द्वारा अत्यन्त मनोयोग पूर्वक तथा कठिन परिश्रम से पूर्ण किया गया है। आशा है कि विद्वान् दर्शक एवं छात्रगण इससे लाभान्वित होंगे।

यज्ञपात्रों के परिचय

१ उत्तरारणि- यह यज्ञपात्र शमीगर्भ अश्वत्थवृक्ष के काष्ठ से अग्नि उत्पादन के निमित्त बनाई जाती है। इसी काष्ठ में से एक आठ अंगुल लम्बा टुकड़ा कील के आकार जैसा काटकर मन्थ बनाया जाता है। ''उत्तरारणेरीशानदिक्संस्थ-मष्टांगुलं प्रमन्थं छित्वा, दे.या.प.-पृष्ठ 104

आश्वत्थीन्तु शमीगर्भामरणीं कुर्वीत सोत्तराम्।
उरोदीर्घा रत्निदीर्घा चतुर्विंशाङ्गुलां तथा।।
चतुरङ्गुलोच्छ्रितां कुर्यात् पृथुत्वेन षडंगुलाम्।
अष्टाङ्गुलः प्रमन्थः स्याच्चात्रं स्याद्द्वादशाङ्गुलम्।।
ओबिली द्वादशैव स्यादेतन्मन्थनयन्त्रकम्।
मूलादष्टाङ्गुलमुत्सृज्य त्रीणि त्रीणि च पार्श्वयोः।।
मूलादष्टाङ्गुलं त्यक्त्वा अग्रात्तु द्वादशाङ्गुलम्।
देवयोनिः स विज्ञेयस्तत्र मध्यो हुताशनः।। इति
गृह्यसंग्रह- १/७८-८१ ।

२ अधरारणि- जिस काष्ठ पर मन्थ रखकर अग्नि मन्थन किया जाता है, उसे अधरारणि कहते हैं। चौबीस अंगुल लम्बी, छः अंगुल चौड़ी और चार अंगुल ऊँची बनाई जाती है। ''अधरारणिमुत्तराग्रां निधाय । दे.या.प.-पृष्ठ 104

३ नेत्र- अग्निमन्थन के लिए मन्थ में लपेटे जानेवाली डोरी नेत्र है। यह चार हाथ लम्बी डोरी होती है। ''नेत्रं स्याद् व्याममात्रकम् । यज्ञपार्श्व परि.- श्लोक 4.1

४ मन्थ- यह यज्ञपात्र कील जैसा आठ अंगुल लम्बा उत्तरारणि में से टुकड़ा निकालकर बनाया जाता है। इसका नुकीला भाग अधरारणि पर रखकर ऊपर से ओविली से दबाकर मध्य में पहले से लपेटी हुई रस्सी को दोनों हाथों से खींचकर अग्नि मन्थन किया जाता है। अग्नि का मन्थन किये जाने के कारण ही इसका नाम मन्थ पड़ा है। ''एकशलाकया मन्थः । का.श्रौ.सू.- 5/8/18

५ ओबिली- अग्निमन्थन करते समय मन्थ को जिस काष्ठ से दबाते हैं, उसे ओविली कहते हैं। यह बारह अंगुल लम्बी होती है। ''ओविली द्वादशांगुल्या। यज्ञपार्श्व श्लोक 41

६ अग्निहोत्रहवणी- ''अग्नौ हूयते यया साऽग्निहोत्रहवणी'' विकङ्कत काष्ठ की बाहुमात्र लम्बी, आगे की ओर चार अंगुल गर्तवाली, हंसमुखी होती है। इससे अग्निहोत्र किया जाता है। ''अग्निहोत्रहवणी हंसमुखी । दे.या.प.-पृष्ठ 6

७ स्फ्य- यह यज्ञपात्र खदिर काष्ठ का बनता है। यह एक हाथ लम्बा, दोनों ओर धारवाला तथा आगे से नुकीला होता

है। यज्ञ के समय आग्नीध्र नामक ऋत्विज इसे अपने हाथ में लिए रहता है। वज्र इसका नामान्तर है।
''स्फ्यश्च। का.श्रौ.सू.-1/3/33

८ धृष्टि- यह पात्र कपालोपधान से पूर्व अग्नि को हटाने में उपयोगी है। यह हाथ के पंजे के आकार की, एक हाथ लम्बी होती है। उपवेष इसका नामान्तर है।
''धृष्टिरसीत्युपवेषमादाय। का.श्रौ.सू.-2/4/25

९ उपवेष- यह धृष्टि का ही नामान्तर है।

१० उलूखल- हविर्द्रव्य को कूटने में प्रयुक्त होने वाला यह यज्ञपात्र पलाश काष्ठ का बना होता है। यह बारह अंगुल उॅचा और मध्य में कृश होता है।
''पालाशः स्यादुलूखलः। दे.या.प.-पृष्ठ 6

११ मुसल- मुस्यति खण्डयतीति मुसलम् यह यज्ञपात्र खदिर काष्ठ का बनता है। यह बारह अंगुल लम्बा और गोल आकार का होता है। यव, व्रीहि आदि हविर्द्रव्य का कण्डन इसी से होता है। ''खादिरं मुसलं कार्यम्।, मुसलोलूखलेवार्क्षे स्वायते सुदृढे तथा।'' दे.या.प.-पृष्ठ 6

१२ उपयमनी- जुहू के आकार की और जुहू से बड़ी एक स्रुची को उपयमनी कहते हैं। ''उपयमनीं महावीरम्'' दे.या.प. -पृष्ठ 265

१३ जुहू- हूयतेऽनयेति जुहूः होम करने की स्रुची को जुहू कहते हैं। यह बाहुमात्र लम्बी, आगे की ओर चार अंगुल गड्ढेवाली, हंसमुखी होती है। यह पलाश काष्ठ से बनायी जाती है। इसी से देवता को हविर्द्रव्य अर्पित किया जाता है। जुहू के विषय में ''पालाशी जुहूः। का.श्रौ.सू.-1/3/35, पर्णमयी जुहूर्भवति। तै.सं.-3/7/5 श्रौतवाक्य मिलते हैं।

१४ उपभृत्- उप समीपे भ्रियत इति उपभृत्। यह स्रुची अश्वत्थ काष्ठ की बनती है। इसका आकार और माप जुहूवत् होता है। याग के समय अध्वर्यु इसे अपने साथ रखता है। जुहू का आज्य समाप्त होने पर शेष आहुति के लिए इसमें से जुहू में आज्य लेकर आहुति दी जाती है। ''आश्वत्थ्युपभृत्'' का.श्रौ.सू.- 1/3/36

१५ ध्रुवा- वेद्यामप्रचलिता तिष्ठतीति ध्रुवा । यह मान और आकार में जुहू सदृश स्रुची है। यह वेदि में रखी रहती है। याग के निमित्त इसमें से ही स्रुवा से आज्य लेकर जुहू में छोड़ते हैं और याग करते हैं। अभिघारणं ध्रुवायाः। का.श्रौ.सू.-3/3/9

१६ रौहिणहवणी- रोहिण पुरोडाश का हवन जिस स्रुची से किया जाता है, उसे रौहिणहवणी कहते हैं। यह गर्तरहित, बाहुमात्र लम्बी, जुहूवत् आकार की स्रुची होती है।

''रौहिणहवन्यादाय । दे.या.प.- पृष्ठ 268

१७ मयूख- दूहने के निमित्त अजा को बॉधने के लिए प्रयुक्त लकड़ी की खूँटी को मयूख कहते हैं। स्थूणा मयूखम्। का.श्रौ.सू.- 26/2/15

१८ शम्या- यह यज्ञपात्र वारण काष्ठ निर्मित, बारह अंगुल लम्बी तथा आगे से नुकीली होती है। यव एवं व्रीहि को पीसने के समय इसे शिला के नीचे रखते हैं। दृषद् एवं उपल के ऊपर इसके समाहनन द्वारा कुक्कुटवाणी उत्पन्न की जाती है, जिससे असुर नष्ट होते हैं। ''शम्या प्रादेशमात्री ।''
दे.या.प.-पृष्ठ 7

१९ इडापात्री- यह यज्ञपात्र वारण काष्ठ निर्मित, एक अरत्नि लम्बी, छः अंगुल चौड़ी, बीच में गहरी और कृशमध्या होती है। अध्वर्यु पुरोडाश और चरु प्रभृति की आहुति के अनन्तर शेष हविर्द्रव्य (पुरोडाश) को इसमें रखकर होता को देता है, जिसे इडोपह्वान के बाद ऋत्विज सहित यजमान भक्षण करते हैं। ''इडापात्री0 अरत्निमात्र्यौ मध्यसंगृहीते''। दे.या.प.- पृष्ठ 7

२० स्रुव- स्रवति आज्यं यस्मात्। जिस पात्र से अग्नि पर आज्य की आहुति दी जाती है, उसे स्रुव कहते हैं। यह खैर की लकड़ी का अरत्निमात्र लम्बा बनता है। इसमें आज्य लेने

के लिए आगे की ओर अंगुष्ठपर्वमात्र का गर्त होता है।
''खादिरः स्रुवः'' का.श्रौ.सू.-1/3/3/4

२१ इध्म- पलाश की लकड़ी को काटकर इध्म बनायी जाती है। ये एक हाथ लम्बी होती है। प्रकृतियाग में इनकी संख्या पन्द्रह एवं विकृतियाग में सत्रह या इक्कीस होती है।
''पालाशोऽष्टादशसंख्यारत्निमात्रकाष्ठकः, दे.या.प.-पृष्ठ 4

२२ बर्हि- अग्निशाला की वेदि में बिछाये जाने वाले दर्भसमूह को बर्हि कहते हैं।

तृणसंज्ञास्तु ये दर्भा एकपत्राः स्मृतास्तु ते ।
ते बर्हिः संज्ञकादर्भारत्निमात्राधिकाश्च ये।।

यज्ञपार्श्व परिशष्ट- श्लोक 9

२३ पुरोडाशपात्री- यह एक वारणकाष्ठ का प्रादेशमात्र चतुरस्र पात्र है। इन्हीं पर पुरोडाश रखे जाते हैं। एक कपाल पर श्रृत पुरोडाश को रखने के लिए यही पात्री सबिला होती है।

पुरोडाशाख्यपात्री च प्रादेशाश्चतुरस्रिकाः।
मध्ये तु दर्पणाकारा मूले दण्डसमन्विताः।।

यज्ञपार्श्व परिरिश्ष्ट- श्लोक 119-120

२४ प्राशित्रहरण- यह यज्ञपात्र वारणकाष्ठ से बनता है। इस पर प्राशित्रसंज्ञक हवि को रखकर ब्रह्मा को दिया जाता है। इसकी लम्बाई पॉच अंगुल और चौड़ाई चार अंगुल होती है।

पीछे की ओर दो अंगुल का दण्डा होता है। ये दो होते हैं। एक पर पुरोडाश रखा जाता है और दूसरा ऊपर से ढँका जाता है।

प्राशित्रहरणं कुर्यात् पञ्चाङ्गुलप्रमाणकम्।

आदर्शाकारवन्मध्ये0 ।। यज्ञपार्श्व परि.- श्लोक 122

२५ षडवत्त- इडोपह्वान हो चुकने पर अध्वर्यु द्वारा आग्नीध्र को षडवत्त भाग दिया जाता है। वह भाग जिस पात्र पर रखा जाता है, उसे भी षडवत्त कहते हैं। उपर्युक्त पात्र पर दो बार आज्य, दो बार पुरोडाश का भाग और पुनः दो बार आज्य रखने के कारण इस पात्र का नाम षडवत्त यथार्थ है। ''अग्नीधे षडवत्तम् 0 । का.श्रौ.सू.- 3/4/16

२६ द्रोणकलश- यह विकङ्कतकाष्ठ का यज्ञपात्र है। इसकी लम्बाई अठारह अंगुल या एक हाथ की कही गई है, और चौड़ाई बारह अंगुल रहती है। मध्य में गर्तवाला और चारों ओर परिधियुक्त होता है। इसमें सोमरस छाना जाता है। ''द्रोणकलश0 कुर्यादरत्निमात्राणि ।''-

यज्ञपार्श्व परि.- श्लोक 118

२७ होतृपीठ- जिस यज्ञकाष्ठनिर्मित पीठ पर बैठकर होता सामिधेनी ऋचा पढ़ता है, वह होतृपीठ है। यह एक अरत्नि लम्बा और प्रादेशमात्र चौड़ा होता है।

आसनानि चारत्निमात्रदीर्घाणि प्रादेशमात्रविपुलानि0।

दे.या.प.- पृ 7

२८ शूर्पम्- यह पात्र बॉस से बना होता है। यज्ञ के लिए जंगल से शकट पर लादकर धान या यव लाया जाता है। उसे कूटकर इसी शूर्प से पछोड़कर साफ किया जाता है।

शूर्पं वैणवमेव च0 । दे.या.प.- पृष्ठ 6

२९ कृष्णाजिन- कृष्णमृग के चर्म को कृष्णाजिन कहते हैं। धान कूटने के समय उलूखल के नीचे और अग्निमन्थन के समय अरणी के नीचे इसे बिछाते हैं।

''कृष्णाजिनमादत्ते। श.प.ब्रा.- 1/1/1/4

३० दृषत्- दीर्यते असौ दृषत्। पुरोडाश बनाने के लिए यव या व्रीहि का पेषण संस्कार इस पर होता है। यह एक शिला है। यह एक रत्नि लम्बी और चौड़ी चतुरस्र होती है। दृषद्रत्निप्रमाणेन । यज्ञपार्श्व परि.- श्लोक 24

३१ उपला- पुरोडाश बनाने के लिए यव या व्रीहि को पीसने की लोढ़िया को उपल कहते हैं। ''तथोपला0 । यज्ञपार्श्व परि. - श्लोक 124

३२ श्रृतावदान- यह प्रादेशमात्र का एक यज्ञपात्र है। पुरोडाश में से अवदान लेने के निमित्त इसका उपयोग होता है। इसका आकार खुरपी जैसा कहा है।

''प्रादेशमात्रं तीक्ष्णाङ्गुष्ठपर्वमात्रपृथुमुखम्'' दे.या.प.- पृष्ठ 7

३३ आज्यस्थाली- देवता के निमित्त हवन अथवा याग करने का आज्य जिस पात्र में रखते हैं, उसे आज्यस्थाली कहते हैं।

आज्यस्थाली च कर्तव्या तैजसद्रव्यसम्भवा।
माहेयी वापि कर्तव्या सर्वास्वाज्याहुतीषु च ।।

कात्यायनस्मृति- 15/10

३४ अन्तर्धानकटः- यह बारह अंगुल लम्बा, छः अंगुल चौड़ा और अर्धचन्द्राकार एक यज्ञपात्र है। जिस समय अध्वर्यु गार्हपत्य के अग्नि पर पत्नीसंयाज करता है, उस समय देवपत्नियों का आवाहन होता है। लज्जा स्त्रियों का सहज धर्म है। साथ ही स्त्रियाँ पुरुष के सम्मुख भोजन करना पसन्द नहीं करतीं। सम्भवतः इसीलिए इस पात्र को बीच में रखकर उपर्युक्त कार्य का निर्वाह किया जाता है।

अन्तर्धानकटस्त्वर्धचन्द्राकारो द्वादशांगुलः । दे.या.प.-पृष्ठ 7

३५ शकट- याग में प्रयुज्यमान यव, व्रीहि आदि हविपदार्थों को जंगल से काटकर जिस पर लादकर यज्ञभूमि तक लाया जाता है, वह शकट कहलाता है। इसका उपयोग इष्टि तथा सोमयाग में आवश्यक रूप से होता है। ''श्रपणस्य पश्चादनस्तिष्ठत्समंगम्'' का.श्रौ.सू.- 2/3/12

३६ रथ- वाजपेयादि सोमयागों में रथारोहण का विधान है। एतदर्थ रथ की आवश्यकता होती है।

''रथावहरणम्'' का.श्रौ.सू.- 14/3/1, अथ वाजपेये सप्तदशानां रथानां त्रयस्त्रयोऽश्वा:।'' बौ.श्रौ.सू.- 25/33

३७ वसतीवरी- यज्ञ के कार्य के लिए उपयोग में आने वाले आवश्यक जल को वसतीवरी कहते हैं। यह जल विधिपूर्वक नदी से घड़ों में लाया जाता है। इसी जल से सोमाभिषवादि कार्य होते हैं। ''वसतीवरीर्निनयन्ति । दे.या.प.- पृष्ठ 308

३८ धमनी- वंश निर्मित जिस पात्र के द्वारा मुॅंह से हवा फेंकते हुए अग्नि प्रज्ज्वलित करते हैं, उस पात्र विशेष को धमनी कहते हैं। ''न पक्षपेनोपधमेत्। यज्ञपार्श्व श्लोक-66.67

३९ महावीरपात्र- अग्निष्टोम प्रभृति यागों में प्रवर्ग्य को यज्ञ का शिरस्थानीय कहा गया है। प्रवर्ग्य और घर्म महावीर का पर्याय है। महावीरसंज्ञक एक मिट्टी का पात्र बनाया जाता है। यह कई प्रकार की मिट्टी, गवेधुका और दूध आदि से सविधि बनता है। यह पात्र प्रादेशमात्र ऊॅंचा, चौड़े पेंदेवाला, चौड़े मुॅंहवाला और मध्य में कृश होता है। इसमें घी भरकर खूब खौलाते हैं। अनन्तर उसे मैदान में ले जाकर, उसमें दूध छोड़ते हैं। दूध छोड़ते ही अत्यन्त भयंकर ज्वाला निकलती है। बाद में उसे यज्ञशाला में लाकर उससे हवन करते हैं।

''महावीरं परिसिंचति। का.श्रौ.सू.- 26/4/6,कुर्यात्प्रादेशमात्राणि महावीराणि0 । यज्ञपार्श्व परि.- श्लोक 18

४० चरुस्थाली- याग के निमित्त गार्हपत्य पर पाचित ओदन चरु है। यहाँ विशेष देवता के लिए विशेष द्रव्य विहित है। इस प्रकार देवता विशेष हेतु चरु बनाकर जिस पात्र में रखा जाता है, उसे चरुपात्र कहते हैं।

४१ एकधन- यज्ञोपयोगी पानी से भरा हुआ मिट्टी का घड़ा एकधन है। ''प्रत्यगेकधनान्'' का.श्रौ.सू.- 9/2/22

४२ परीशास- महावीर पात्र को अग्नि पर से पकड़कर उठाने के लिए यह एक यज्ञकाष्ठ का सन्दंश है। ''परीशासावादत्ते । का.श्रौ.सू.- 26/5/12

४३ घन- यह काष्ठ के दण्ड वाला लोहे का बना होता है। भूमि में मयूख या स्थूणा गाड़ने के लिए इसका उपयोग किया जाता है। ''स्थूणां गोबन्धनार्थं निखनति।''

दे.या.प.-पृष्ठ 265

४४ परशु- यज्ञकार्य के निमित्त दर्भ अथवा समित् को काटने का शस्त्र परशु है। ''पलाशशाखां छिनत्ति''

दे.या.प.-पृष्ठ 76

४५ दर्वि- दृणाति विदारयति येन स दर्विः। यह विकंकत काष्ठ की बनी कलछुल के आकार की होती है। चातुर्मास्य याग में इसी से हविर्द्रव्य की आहुति दी जाती है।

''दर्व्यादत्ते'' का.श्रौ.सू.-5/6/30, का.स्मृति- 15/15

४६ चरुपात्र- जिस पात्र में देवता विशेष हेतु निर्दिष्ट हविर्द्रव्य ओदनादि को गार्हपत्य पर रखकर पकाया जाता है, उसे चरुपात्र कहते हैं। इसका मुँह चौड़ा, पेंदी गोल एवं आकार पतीला जैसा होता है।

४७ चमसपात्र- ये यज्ञपात्र विकङ्कत काष्ठ के बने होते हैं। इनका आकार और मान प्रणीता सदृश है। इनमें सोमरस रखकर आहुति दी जाती है। ये संख्या में दस होते हैं। प्रत्येक को एक दूसरे से अलग जानने के लिए इसके दण्ड में अलग-अलग चिह्न होते हैं।

विकंकतमयाः श्लक्ष्णास्त्वग्विलाश्चमसाः स्मृताः।
चतुरंगुलखाताश्च तेषां दण्डेषु लक्षणम्।।
होतुर्मण्डल एव स्याद् ब्रह्णश्चतुरस्रकः।
उद्गातृणां च त्र्यस्त्रिः स्याद्याजमानः पृथुः स्मृतः।।
प्रशास्तुरवतष्टः स्यादुत्तष्टो ब्रह्मशंसिनः।
पोतुरग्रे विशाखी स्यान्नेष्टुः स्याद्विगृहीतकः।।
अच्छावाकस्य रास्ना च आग्नीध्रस्य मयूषकः।।

दे.या.प.-पृष्ठ ३०६

४८ मण्डलहोतृचमस- होता नामक ऋत्विज के लिए जो चमस होता है, उसे होतृचमस कहते हैं। पहचान के लिए इसके दण्ड पर मण्डलाकार चिह्न होता है। ''होतुर्मण्डल एव चमस स्यात् ।''

४९ चतुरस्र-ब्रह्मचमस- ब्रह्मा नामक ऋत्विज के लिए जो चमस होता है, उसे ब्रह्मचमस कहते हैं। पहचान के लिए इसके दण्ड पर चतुरस्र चिह्न होता है। ''ब्रह्मणश्चतुरस्रक:''।

५० त्र्यस्त्रि-उद्गातृचमस- उद्गाता संज्ञक ऋत्विज का सोमरस भरने के लिए जो चमस होता है, उसे उद्गातृ चमस कहते हैं। पहचान के लिए इसके दण्ड पर त्र्यस्त्रि (त्रिकोण) चिह्न होता है। ''उद्गातृणां च त्र्यस्त्रि: स्यात्''।

५१ पृथु-यजमानचमस- यजमान के लिए जो चमस होता है,उसे यजमान चमस कहते हैं। पहचान के लिए इसका दण्ड पृथु (विस्तृत / चौड़ा) होता है। ''याजमान: पृथु: स्मृत:''।

५२ अवतष्ट-प्रशास्तृचमस- प्रशास्ता नामक ऋत्विज के लिए जो चमस होता है, उसे प्रशास्तृ चमस कहते हैं। पहचान के लिए इसका दण्ड नीचे की ओर झुका रहता है। ''प्रशास्तुरवतष्ट: स्यात्''।

५३ उत्तष्ट-ब्राह्मणाच्छंसिचमस- यह ब्राह्मणाच्छंसि नामक ऋत्विज का चमस है। इसकी पहचान यह है कि दसका दण्ड ऊपर की ओर मुड़ा रहता है। ''उत्तष्टो ब्रह्मशंसिन:''।

५४ विशाखी-पोतृचमस- यह पोता नामक ऋत्विज का चमस है। इसका दण्ड द्विमुख जैसा होता है। इस द्विमुख की आकृति को विशाख कहा गया है। इसी विशाखी का रूपान्तर वैशाखी भी है, जिसका उपयोग एक पैरवाले लोग करते हैं। ''पोतुरग्रे विशाखी स्यात्''।

५५ द्विगृहीतक-नेष्टृचमस- यह पात्र नेष्टा नामक ऋत्विज का चमस पात्र है। इसके दण्ड में पकड़ने के लिए दो तरह की आकृति बनी होती है। ''नेष्टुः स्याद् द्विगृहीतक:''।

५६ रास्नावान्-अच्छावाक्चमस- यह पात्र अच्छावाक् नामक ऋत्विज का चमस पात्र है। इसके दण्ड में रस्सी लिपटी हुई हो, ऐसा चिह्न बना रहता है। ''अच्छावाकस्य रास्ना च''।

५७ मयूख-आग्नीध्रचमस- यह पात्र आग्नीध्र नामक ऋत्विज का चमस पात्र है। इसका दण्ड त्रिकोणाकृति का बना होता है। ''आग्नीध्रस्य मयूषक:''।

५८ सप्तदशाररथचक्रम्- रथ के चक्र में अक्ष से निचले हिस्से तक को जोड़ने वाला दण्डा अरा कहलाता है। ऐसे सतरह अरों वाला रथ का चक्र सप्तदशाररथचक्र कहलाता है।

५९ राजासन्दी- सोम को राजा कहा जाता है। ''सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा'' (शु.य. सं.-9/40) पूजनीय होने से उसे देवयजन में आसन्दी पर स्थापित किया जाता है। यह चार पाये की मूंज से बीनी रहती है। ''औदुम्बरीमासन्दीम् ।''
दे.या.प.- पृष्ठ 260

६० ग्रहपात्रम्- ये पात्र दर्शपूर्णमास याग में प्रयुक्त उलूखल के आकार के होते हैं। अनेक होने के कारण इनमें अलग अलग चिह्न होते हैं। इनमें सोमरस लेकर आहुति दी जाती है। इनके निर्माण के लिए विकंकत काष्ठ को उपयुक्त माना गया है। ''ग्रहचमसद्रोणकलशादीनि।'' दे.या.प.- पृष्ठ 7 ।

अग्निचयन याग में विशेष

उपर्युक्त यज्ञपात्रों के अतिरिक्त चयन याग में इष्टकाओं की आवश्यकता होती है। इष्टकाओं के चयन किए जाने के कारण ही इस याग का नाम चयन है। इसमें विविध आकृतियों की इष्टकाएँ प्रयुक्त होती हैं। उन सब प्रकार की इष्टकाओं के नाम एवं उनकी आकृति का निदर्शन इस प्रकार है।

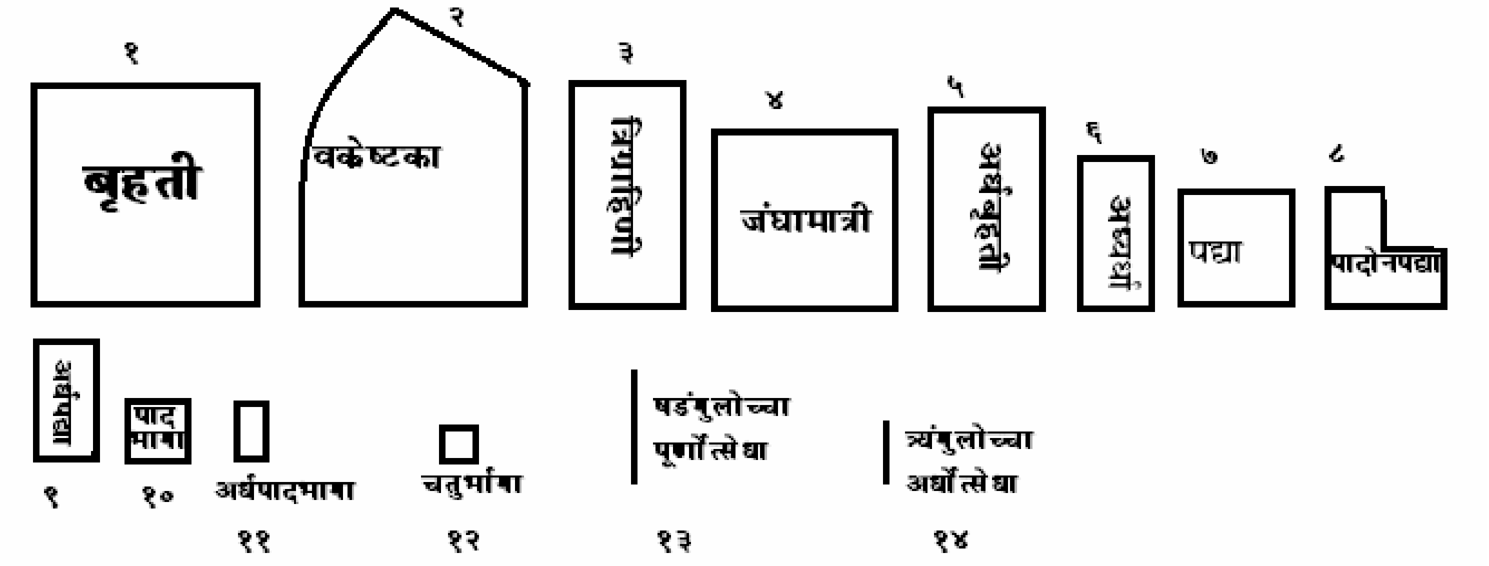

उपर्युक्त समस्त इष्टकाओं के माप सहित निर्माण विधि इस प्रकार हैं। हर नाप की ईंट बनाने के लिए पहले लकड़ी का साँचा बनाना चाहिए। साँचा तैयार होने पर उन्हीं साँचों में अपेक्षित संख्या में ईंट बना लेनी चाहिए। ईंट बनाने के समय आवश्यकता से अधिक ईंट बनानी चाहिए। उसका कारण यह

है कि सूखने और पकाने में कुछ टूटकर या फट कर कम हो जाते हैं। फलतः समय पर अव्यवस्था न हो इस कारण बड़े नाप की ईंटें चौगुनी, मध्यम प्रमाण की दुगुनी और छोटी डेढ़गुनी बनानी चाहिए। जैसा कि देवयाज्ञिकपद्धति में कहा गया है- **इष्टकानामियं संख्योपधानकालीना परं निष्पादनकाले एताभिरुक्ताभिस्संख्यकाभिरधिका इष्टकाःनिष्पादनीयाः। तदनु महत्य इष्टकाश्चतुर्गुणाः, मध्यप्रमाणाः द्विगुणाः, अर्धोत्सेधाश्चतुर्गुणाः । पादभागा अर्धपादभागा अध्यर्धगुणाः निकृष्टपक्षे । एवमेवान्यास्विष्टकासु वृद्धिः कार्या । यतः पाकशोषाभ्यामिष्टकाप्रमाणस्य ह्रासो भवति । तेन त्रिंशांशेन द्वात्रिंशांशेन वा पादभागस्यार्धप्रमाणमधिकं कार्यम् । दे.या.प. पृष्ठ ५१८**

इनमें से कुछ ईंटें यजमान और कुछ यजमानपत्नी को बनाना अनिवार्य है।

सुपर्ण चिति के पाँच प्रस्तार होते हैं। पाँचों प्रस्तारों में जमायी जाने वाली अग्नि से पकाई हुई इष्टकाओं की संख्या 11170 ग्यारह हजार एक सौ सत्तर कही गई है। इनके दो भेद कहे गये हैं- यजुष्मती और लोकम्पृणा। यजुष्मती का उपधान समन्त्रक होता है, लोकम्पृणा के उपधान में केवल स्थिरीकरण (सूददोहसाधिवदन) किया जाता है। इन्हीं इष्टकाओं को जमाने से चिति तैयार होती है।

इष्टकाओं के नाम, मान और संख्या

इष्टका का नाम	मान अंगुल में	यजुष्मती	लोकम्पृणा	गार्हपत्येष्टका	धिष्ण्येष्टका	संख्या
अध्यर्धा	१८×१२×६	०१७	००९४			०१११
अर्धपद्या	१२×६×६	०७१	००९९	२	०८	०१८०
अर्धपादभागा	६×३×६		०६६८		१०	०६७८
अर्धबृहती	२४×१२×६			४		०००४
अर्धोत्सेधा अर्धपद्या	१२×६×३	०१६				००१६
अर्धोत्सेधा पद्या	१२×१२×३	०१४				००१४
चतुर्भागा	३×३×६				१२	००१२
जंघामात्री	१८×१८×६	००६	००४४			००५०
त्रिग्राहिणी	२४×१८×६		००७०			००७०
पद्या	१२×१२×६	२४४	०५०२	७		०७५३
पादभागा	६×६×६		९२१८		४८	९२६६
पादोनपद्या	१२×१२में १/४ कम, ६ ऊँची	००२				०००२
बृहती	२४×२४×६		०००६			०००६
वक्रा	चित्रानुसार			८		०००८
योग		३७०	१०७०१	२१	७८	१११७०

इसके अतिरिक्त 28 इष्टकाएँ और गिनायी गयी हैं । वे नाम और संख्या में इस प्रकार हैं।

क्रमसं0	नाम	संख्या	स्वरूप
1	सिकता	1	यजुष्मती
2	पुष्करपर्ण	1	,,
3	रुक्म	1	,,
4	सुवर्णपुरुष	1	,,
5	श्रीपर्णी स्रुची	1	,,
6	औदुम्बरी स्रुची	1	,,
7-9	स्वयमातृण्णा	3 (अग्निपक्व)	,,
10	दूर्वा	1	,,
11	कूर्म	1	,,
12	उलूखल	1	,,
13	मुसल	1	,,
14-18	पशुशिर	5	,,
19	विकर्णी	1	,,
20-23	लोकेष्टका	4 (अग्निपक्व)	,,
24	पृश्न्यश्मा	1	,,
25	उखा	1	,,
26-28	निर्ऋति	3 (तुषाग्निपक्व)	----

निर्ऋति संज्ञक इष्टकाएँ लोकम्पृणा एवं यजुष्मत्य दोनों से भिन्न होते हैं।

यहाँ विशेष रूप से यह उलेखनीय है कि वक्रेष्टका के निर्माण हेतु एक विशिष्ट विधि का निर्देश हमारे ऋषियों ने किया है, जिसका चित्र अधोनिर्दिष्ट है–

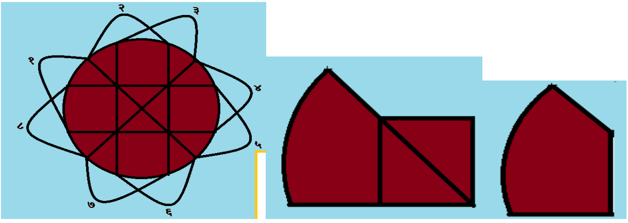

उपर्युक्त विधि से वक्रेष्टका का निर्माण करना चाहिए। इनका प्रयोग गार्हपत्य चिति के चयन में किया जाता है। गार्हपत्य चिति का चित्र इस प्रकार है–

वक्रेष्टका– ८
अर्धपद्या– २ (६X६X६)
पद्या – ७ (१२X१२X६)
अर्धबृहती– ४ (१२X२४X६)
कुल =२१ इष्टकाएँ (८यजुष्मती, १३लोकम्पृणा)

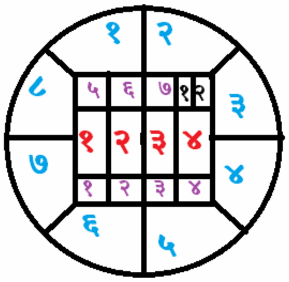

विदित हो कि चयन याग में जिस अग्नि चिति का निर्माण किया जाता है, उसके पाँच प्रस्तार होते हैं। कामना के भेद से विविध चितियों का वर्णन श्रौतग्रन्थों में प्राप्त होता है। यथा– **शतपथश्रुतौ ‘‘द्रोणचितं वा रथचक्रचितं वा कङ्कचितं वा प्रउगचितं वोभयतः प्रउगं वा’’**[1] **कात्यायनेनाप्याह**–

---

[1] श.प.ब्रा.–६/७/२/८

‘‘द्रोणचिद्रथचक्रचित्कङ्कचित्प्रउगचिदुभयतःप्रउगः समुह्यपुरीषः’’[2]**इति।**

शुक्लयजुर्वेदसंहिता में सुपर्ण चिति का उल्लेख किया गया है, जिसके आधार पर यहाँ सुपर्ण चिति के उन पाँचों प्रस्तारों के चित्र प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त अन्यान्य भी यज्ञादि सम्बन्धी जानकारियाँ विद्यापीठीय बेबसाइट पर यथा समय तैयार होने पर उपलब्ध कराए जाएँगे। सम्प्रति संकलित सामग्रियों को प्रस्तुत किया जा रहा है। आशा है कि विद्वद्गण इन सूचनाओं को स्वीकार करेंगे।

---

[2] का.श्रौ.सू.–१६/५/९